अध्याय सैंतालीसवाँ

॥श्री गणेशाय नम:॥ श्री सरस्वत्यै नम:॥ श्री सिद्धारूढ़ाय नम:॥

"निर्मल हृदय में निवास करने वाले सतगुरु सिद्धनाथजी, आप अपने भक्तों को अभयदान देते हैं और दीन जनों के दुख तथा पीड़ा दूर करते हैं। आपकी कृपा से जिन लोगों में परिवर्तन हुआ है ऐसे लोगों की आप रक्षा करते हैं तथा उन्हें ज्ञान प्रदान करते हैं। जो आपके चरणकमलों का चिंतन करता है, आप उसको मुक्ति देते हैं।"

सतगुरुजी आपका कोई आदि तथा अंत नहीं हैं, केवल भक्तों को तारने के लिए तथा विविध प्रकार की लीलाएँ दिखाने के लिए आप शरीर धारण करके त्रिगुणों के खेल में शामिल होते हैं। आप के सभी भक्त ये आप ही के अनेक रूप होकर आप उन्हें अपने इर्दगिर्द रखते हैं और उनके संकट के समय, वे आपकी प्रार्थना करते ही आप तुरंत उनकी रक्षा करने जाते हैं। उनके कारण आप शोभायमान होते हैं, अन्यथा आप निर्गुण तथा निराकार हैं। इस प्रकार आप निर्गुण होते हुए, भक्तों की भाव भक्ति की शक्ति तथा उनके पुण्य के प्रभाव से, जन्म न होते हुए भी, पृथ्वी पर जन्म लेते हैं। भक्तोद्धार यही आपका कार्य होने के कारण, उसके लिए आप विविध प्रकार के उपाय करते हैं तथा जिसका जैसा आध्यात्मिक अधिकार (स्थिति) होता है, उसके अनुसार उसे आप बोध करते हैं। वर्ना आपकी दया सभी प्राणियों के प्रति एक समान ही होती हैं; चाहे विव्दान हो या अनपढ़, आप यथाक्रम सभी का उद्धार करते हैं। अब कहानी की ओर ध्यान दीजिए।

सिद्धाश्रम में सिद्धनाथजी रहते समय, एकबार एक भक्त वहाँ पहुँचा और उसने उनसे प्रार्थना की, "महाराज, मेरे घर दूर के राज्य से एक बूढ़ा ब्राह्मण आया हुआ है। वह रोग से जर्जर हुआ है तथा ऐसा लगता है उसकी मृत्यु बिलकुल समीप है; वह मुख से अविरत आपका नाम लेते हुए आप के दर्शन के लिए तड़प रहा है।" उस भक्त के वे करुणा भरे शब्द सुनकर सतगुरुजी तत्काल उसके साथ उसके घर की ओर निकल पड़े। उसके घर पहुँचते ही, उस वृद्ध ब्राह्मण ने उठकर उन्हें प्रणाम किया और बोला, "दयालु सिद्धनाथजी, आप को देखते ही मेरे शरीर में शक्ति का संचार हुआ, मेरे प्राण इस शरीर में केवल आप

के दर्शन की मनोकामना के कारण ही रहे हैं। आप भक्त सखा होकर मुझ पर प्रसन्न हुए हैं। मेरा नाम सुब्बय्यशास्त्री है और हमारी भेंट मल्लिकार्जुन तीर्थ स्थान के पास आप के गुरुजी गजदंड स्वामीजी के सामने ही हुई; उस समय, वाद विवाद के चलते आप ने मेरी बात काट दी थी। मैं एक महान विव्दान हूँ ऐसा मुझे अहंकार था, जिसे आप ने मिट्टी में मिला दिया तथा उसके पश्चात लोगों में मान्यता प्राप्त होकर प्रख्यात संत हो गए। आगे चलकर बहुत पश्चात्ताप होने के कारण मैं आप के दर्शन के लिए निकला, परंतु आप के गुरुजी के आश्रम से आप तीर्थ करने के लिए निकल पड़ने की वार्ता मुझे मिली। उसके पश्चात मेरे मन में वैराग्य की भावना उत्पन्न होकर, मैं स्वयं आप के दर्शन की मनोकामना मन में रखकर यात्रा करते हुए यहाँ तक पहुँचा हूँ। परंतु इस दरमियान रोग से मेरा शरीर जर्जर होकर देहांत होने का समय आया; आप के दर्शन होने तक ईश्वर ने मेरे प्राणों की रक्षा की है। अब मेरा मन अत्यंत आनंदित हुआ है तथा साक्षात सतगुरुनाथजी की भेंट होने के कारण मेरा जीवन धन्य होकर मेरा मन पूर्ण रूप से निश्चिंत हुआ है। आप का स्वरूप मेरी समझ में नहीं आ रहा है, इस जगत में रहने के बावजूद भी आप सब से अलग हैं; जन्मरहित तथा अजेय होने वाले आप का बयान, वेदों में 'निर्गुण' शब्द से किया गया है। परंतु इस निर्गुण ब्रह्म का सगुण रूप देखने के लिए मेरा मन बहुत तड़प रहा था; आप अगर मुझ पर कृपा करेंगे तो मुझे जल्द ही ज्ञान प्राप्ति होगी। हे सतगुरुनाथजी, इस शरीर में होते हुए आप मुझे ज्ञान प्राप्ति का अधिकार दें, यही मेरी प्रार्थना है; और अगर आप यह अधिकार मुझे इस जन्म में न दे पाए तो मुझे ऐसा पुनर्जन्म दीजिए जिससे अगले जन्म में मुझे आप का हमेशा सान्निध्य प्राप्त होकर मेरे हाथ से आप की सेवा हो। यही मेरी अंतिम मनोकामना है। अब मेरा देहांत होने दीजिए।" अत्यंत करुणा भरे ये शब्द सुनकर सतगुरुजी का हृदय पसीज गया, गद्गद् होने से उनका गला रुंध गया और उन्होंने शास्त्रीजी से कहा, "ज्ञान की खान होने वाले सुब्बय्यशास्त्री, अंत:काल के समय मन में सव्दासना रखकर आप देहत्याग कर रहे हैं, इसलिए आप सचमुच ही धन्य हैं। (श्लोक) 'यं यं वापि स्मरन् भावं त्यजत्यंते कलेवरम् ॥ तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भाव भावित:॥१॥ (अर्थ) भगवदगीता में भगवान

श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा है की अंत:काल के समय जो भाव मन में रखकर जीवात्मा देहत्याग करता है, उसी भाव (स्थिति अथवा मन की वृत्ति) को वह फिर से प्राप्त हो जाता है;' शरीर दुरुस्त होते समय जीवात्मा के मन की जो हमेशा स्थिति होती है, वही स्थिति देहांत होने के पश्चात उसे अगले जन्म में प्राप्त होती है। इस देह का त्याग करते ही बिलकुल अल्प समय के पश्चात आपको दूसरे शरीर की प्राप्ति होगी तथा आप के मन में गुरुभक्ति का स्मरण होने के कारण, आप तत्काल मेरे पास आएँगे।" यह सुनते ही शास्त्रीजी ने सतगुरुजी के चेहरे की ओर एकबार देखा और सिद्धारूढ़जी का नाम लेकर प्राण त्याग दिए। उसके पश्चात सभी ब्राह्मणों ने मिलकर शास्त्रीजी की अंत्येष्टि की और सिद्धनाथजी की पूजा करके उन्हें सिद्धाश्रम भेज दिया।
प्रतिदिन शिवबसप्पा नाम का एक सज्जन गरग गाँव में रहने वाले मडिवाल स्वामी नाम के एक ब्रह्मनिष्ठ विव्दान की सेवा करता था। दिनभर शिवबसप्पा बुनाई का काम करता था तथा रात को स्वामीजी की सेवा करने मठ जाता था। रातभर मठ में रहकर सुबह वह घर लौटता था। प्रतिदिन शिवबसप्पा भजन करता था तथा भाव भक्ति से कीर्तनों में बयान की गई वेदांत संबंधी चर्चा सुनता था और शरीर का अभिमान त्यागकर गुरु सेवा करता था। उसकी पत्नी शिवलिंगव्वा ने पति सेवा तथा गुरु सेवा अत्यंत सद्‌भाव से करने के कारण सतगुरुजी बहुत आनंदित हुए। एकबार सतगुरुजी ने शिवबसप्पा से पूछा, "भाई, तुम्हारी क्या मनोकामना है?" सतगुरुजी ने इस प्रकार प्रश्न करते ही शिवबसप्पा ने कहा, "महाराज, आज तक आप की सेवा करता आया हूँ, अब मुझे यह घर गृहस्थी अच्छी नहीं लगती। अब आप की सेवा करने के सिवाय अन्य मेरी कोई भी मनोकामना नहीं है। सतगुरुजी ने वहीं प्रश्न उसकी पत्नी से करते ही वह बोली, "हमारी कोई संतान नहीं है, इसी कारण, हमारा एक पुत्र हो यहीं मेरी मनोकामना है।" उस समय सतगुरुजी ने उस जोड़े से कहा, "आपकी मनोकामना पूरी होगी। यह निश्चित रूप से जान लीजिए की आप के एक ज्ञानी पुत्र होगा।" कुछ समय के पश्चात शिवबसप्पा की पत्नी गर्भवती हो गयी तथा नौ महीने पूरे होते ही उसने एक सुंदर पुत्र को जन्म दिया। एक दिन ज्योतिषी आया और बालक के लक्षण देखकर उसने साफ कहा, "ईश्वर ने यह बालक आप को दिया

है, इसलिए इसका नाम आप शिवपुत्र रखिए। यह एक महान आत्मा है, जो योग भ्रष्ट (ईश्वर प्राप्ति के लिए जीवात्मा उपासना करते समय किसी कारण अगर उसकी उपासना अपूर्ण रहती है, तो ऐसे जीवात्मा को 'योग भ्रष्ट' कहा जाता है) था और इस जन्म में सतगुरुजी की कृपा से ब्रह्मनिष्ठ होगा। उसी प्रकार कदापि भी दुष्ट न होने वाला यह बालक आप के कुल का उद्धारक होगा।" आगे चलकर वह बालक शुक्लपक्ष के चंद्रमा के समान बड़ा हो गया, मातापिता ने बारह वे वर्ष उसका विवाह कर दिया, परंतु पंद्रह वर्ष का होते ही उसके मन में तीव्र रूप से वैराग्य की भावना प्रकट हो गयी। जब उसकी पत्नी मायके गयी थी, तब वह माता पिता को कुछ भी कहेसुने बगैर घर छोड़कर निकल गया और सीधा हुबली आकर पहुँचा। सिद्धाश्रम आकर सिद्धारूढ़जी के चरण कसकर पकड़कर उसने उन्हें कहा, "हे दयालु करुणाघन, मैं आप की शरण में आया हूँ। आप दीनानाथ है, आप ही मुझे तारिए, आप के सिवाय अन्य कोई भी मेरा रक्षक नहीं हैं, मुझे हमेशा आप के चरणों में स्थान दीजिए।" इस प्रकार उसने करुण शब्दों में प्रार्थना की। इसलिए दयालु सतगुरुजी ने उसे उठाकर अभयदान दिया और कहा, "तुम यहाँ निर्भयता पूर्वक रहो। यहाँ किसी भी प्रकार का सांसारिक भय नहीं है।" सतगुरुजी ने उसे अचूक पहचान लिया, उन्होंने मन ही मन कहा की यही वह सुब्बय्यशास्त्री है, जो अंत:काल के समय अधूरी रही हुई मनोकामना पूरी कराने के लिए पुनर्जन्म लेकर आया है। इस पर विद्या का संस्कार होने के पश्चात यह चतुर तथा महापंडित तो हो ही जाएगा, साथ ही यह वेदांत की उपासना करके निश्चित रूप से ब्रह्मज्ञान भी प्राप्त करेगा। सतगुरुजी ने उसे वेद विद्या पढ़ने के लिए पाठशाला भेजा। उस समय शिवपुत्र वेदांत संबंधी सारे ग्रंथ स्वयं पढ़ने लगा। देखते देखते वह वेदवेदांग में निपुण हो गया तथा छह शास्त्रों में भी उसने निपुणता प्राप्त की। उसके पश्चात शरीर के तीन इंद्रियों को नियंत्रित किए हुए शिवपुत्र ने संन्यास धर्म की दीक्षा स्वीकार की। एकबार सिद्धनाथजी ने शिवपुत्र से कहा, "शिवपुत्र, ये पत्थर उठाकर दौड़कर दिखा!" गुरुजी का आज्ञा शिरोधार्य समझकर शिवपुत्र वे पत्थर उठाकर दौड़ने लगा। वे पत्थर बहुत भारी होने के कारण, दौड़ते दौड़ते वह बहुत थक गया तथा अंत में लड़खड़ाकर गिर गया, परिणाम रूप से शरीर जगह जगह छिलकर वह

जखमी हुआ, जिससे शिवपुत्र उदास हो गया। उसे देखकर सतगुरुजी ने कहा, "भाई, क्यों तुम इतने उदास और दुखी हो गये हो? क्यों तुम्हारा चेहरा इतना उतरा हुआ है?" उसने कहा, "नीचे गिरने से मेरे सारे शरीर में वेदना हो रही है।" गुरुनाथजी ने कहा, "'मैं शरीर हूँ' ऐसा समझने से दुख भोगना पड़ता है। दुख केवल शरीर को ही है और उस शरीर पर गर्व होने के कारण तुम्हे दुख भासमान हो रहा है। तुम जानते हो की यह तुम्हारा शरीर है, परंतु तुम 'स्वयं' ही कैसे शरीर हो सकते हो? यहाँ गिरे हुए ये पत्थर तुम देख रहे हो, तुम अच्छी तरह से जानते हो की तुम ये पत्थर नहीं हो, उसी प्रकार तुम्हारे जड़ (स्थूल) शरीर को ही अगर वह शरीर तुम 'स्वयं' हो ऐसा समझ बैठोगे तो उस शरीर में बसने वाली आत्मा को कैसे समझ पाओगे?" सतगुरुजी के ये शब्द सुनते ही शिवपुत्र का मन सोच में पड़ गया। उसके पश्चात वह प्रतिदिन एकांत में बैठकर गुरुजी के शब्दों पर चिंतन करने लगा।

वह मन ही मन विचार करने लगा की गुरुदेव ने कहा की मेरा यह शरीर 'मैं' नहीं हूँ। चैतन्यरहित हुआ मेरा यह शरीर मुझ से (मेरी आत्मा से) पूर्ण रूप से भिन्न है। ऐसा होने के बावजूद भी इंद्रियों के व्दारा 'मैं' स्वयं सारे खेल (यानी गतिविधियाँ तथा अन्य सारे कर्म) खेल रहा हूँ। इस प्रकार एक वर्ष तक चिंतन करने के पश्चात वह इस निर्णय पर पहुँचा की वह एक स्थूल शरीर न होकर एक शुद्ध चैतन्य (आत्मा) है। उसके मन में हो रहा परिवर्तन जानने वाले सतगुरुजी ने एक दिन काली मिर्च कूटकर पानी में मिलायी और शिवपुत्र को बुलाया, वह समीप आते ही कुछ समझने से पहले ही अचानक उन्होंने वह जल उसकी आँखों में डाल दिया। तत्काल वह चिल्लाकर कहने लगा, "सतगुरु महाराज, मेरी आँखों में भयानक जलन हो रही हैं।" उसपर सतगुरुजी ने कहा, "अरे, आँखों में होने वाली जलन तुम समझ रहे हो, तो फिर तुम स्वयं 'आँखें' कैसे हो सकते हो? यह मुझे बता दो। तुम्हारे शरीर के इंद्रिय यानी तुम 'स्वयं' अगर ऐसा कहोगे तो तुम्हारे शरीर के दस इंद्रिय हैं, उनमें से कौन सा इंद्रिय 'तुम' हो? अथवा दसों इंद्रियों के रूप में भी तुम ही हो?" सतगुरुजी के ये शब्द सुनकर शिवपुत्र का मन सोचने लगा की सचमुच मनुष्य का मन ही इंद्रियों को चलाता (इंद्रियों से सारे कार्य कराता है) है; इसका अर्थ हुआ की मन ही 'मैं' हूँ;

इस मन के कारण ही इंद्रियों की सारी गतिविधियाँ (हालडोल) होती हैं तथा सारे संकल्प और विकल्प भी मुझ में ही हैं। मन की सारी वृत्तियाँ भी मेरा ही रूप है (क्योंकि ये वृत्तियाँ मन में ही उत्पन्न होती हैं)। इस प्रकार एक वर्ष तक चिंतन करने के पश्चात उसने निश्चय किया की 'मैं' यानी मेरा मन ही है। उसपर एकबार सतगुरुजी ने उसे कहा, "अब मुझे बताओ की तुम कौन हो।" उसने कहा, "मैं (यानी मेरा मन) स्वयं संकल्प तथा विकल्प करता हूँ, मुझे ही पाप-पुण्य का लाभ होता है, सभी प्रकार के कष्ट भी मुझे ही सहने पड़ते है, ऐसा यह मेरा मन ही 'मैं स्वयं' हूँ।" सतगुरुजी ने उसे कहा, "विकारों (दोषों) से भरा हुआ तुम्हारा मन है, क्योंकि उस में विविध प्रकार के अच्छे तथा बुरे विचार आते हैं। ऐसे मन में होने वाली (उत्पन्न होने वाली) वृत्तियों (जो अच्छी अथवा बुरी हैं) के बारे में इस प्रकार का निर्णय लेने वाले तुम कौन हो, यह मुझे बता दो।" उसपर फिर से एक वर्ष तक एकांत में बैठकर विचार करने के पश्चात उसने निश्चय किया की मन में उठने वाली वृत्तियों की जड़ बुद्धि में है, यानी मैं 'स्वयं' बुद्धि हूँ। क्योंकि मैं सुख तथा दुख समझता हूँ, कर्म करने वाला कर्ता तसेच किए हुए कर्मों के फल भोगने वाला भोक्ता भी मैं ही हूँ, इसलिए यह बुद्धि ही 'मैं स्वयं' हूँ, ऐसा शिवपुत्र ने निश्चय किया। एक वर्ष के अंत में उसने सतगुरुजी से कहा, "महाराज, मेरी बुद्धि ही मैं 'स्वयं' हूँ।" उसपर सतगुरुजी ने कुछ भी नहीं कहा। उसके पश्चात एक दिन प्रात:काल के समय सतगुरुजी ने शिवपुत्र की पीठ थपथपाकर उसे गाढ़ निद्रा से जगाया। अचानक पीठ पर थाप पड़ने से वह गड़बड़ाकर उठ गया। उसी क्षण सतगुरुजी ने उसे पूछा, "इतने समय तक तुम ने क्या अनुभव किया, यह मुझे बता।" उसने कहा, "गुरुदेव, मैंने इतने समय तक कुछ भी नहीं जाना। इसलिए, मुझे किसी भी प्रकार का अनुभव नहीं हुआ।" सतगुरुजी ने कहा, "अरे! तुम तो कह रहे थे की तुम्हारी 'बुद्धि' ही तुम स्वयं हो, तो इतने समय तक तुम कहा थे?" शिवपुत्र ने कहा, "सतगुरुनाथ, सुख के सिवाय अन्य कुछ भी जाने बगैर मैं (यानी मेरी बुद्धि) शून्य था।" उसपर सतगुरुनाथजी ने कहा, "हे सज्ञान शिवपुत्र, तुमने कहा 'मैं था' यानी तुम एक 'अस्तित्व (सत)' हो, तथा शून्य का अनुभव होने के कारण तुम आत्मा अथवा ब्रह्म हो और सुख की अनुभूति लेने के कारण तुम

निश्चित रूप से 'आनंद' हो। सच्चिदानंद - यही तुम्हारा सच्चा स्वरूप है। यही तुम्हारा स्वरूप चिरंतन होकर उसे पाप-पुण्य की बाधा नहीं होती, वही जगत के फैलाव में भासमान होता रहता है, परंतु तुम केवल आत्मरूप ही हो। तुम स्थूल होने वाले तुम्हारे शरीर को जानते हो, इंद्रियों को हालडोल की प्रेरणा देने वाले प्राण को भी तुम्ही प्रेरणा देते हो, शरीर में प्राण है यह तुम तुम्हारे मन से जानते हो, तुम्हारी बुद्धि से तुम तुम्हारे मन की वृत्तियाँ समझते हो। बुद्धि में हो रहे हुए विचारों के आदान प्रदान के भी तुम्ही साक्षी हो, इस प्रकार दिनरात तुम साक्षी रूप में होते हो। इस प्रकार विचार करने का अभ्यास तुम अविरत करते रहना। हमेशा वैराग्य वृत्ति से रहना। निरभिमानी होकर रहना। तुम स्वयं ही तुम्हारा यह चिरंतन तथा निर्विकार होने वाला आत्मस्वरूप देखते (अनुभव करते) जाओ। हमेशा इस प्रकार तुम स्वरूप का चिंतन करते रहना, विषयोपभोगों के लिए चिंतन मत छोड़ना। वेदांत पर चर्चा, उस पर मनन तथा अविरत एकाग्र होकर चिंतन, इन्ही में तुम तुम्हारा सारा समय लगा देना।" सतगुरुजी ये अमूल्य तथा अमृत से भी श्रेष्ठ शब्द सुनकर शिवपुत्र का मन ब्रह्म रूप हो गया और उसे ब्रह्मानंद का पूर्ण अनुभव प्राप्त हुआ, उसपर उठकर उसने कृतज्ञता से सतगुरुजी के चरण छू लिए। प्रार्थना करते हुए उसने कहा, "हे दयालु सिद्धारूढ़जी, मेरा यह मनुष्य जन्म सार्थ हुआ। आपकी कृपा से मुझे आत्मानुभव की प्रतीति आयी। अब मैं अनन्य होकर मुझे योग्य प्रकार की सेवा देने की आप से प्रार्थना करता हूँ तथा हमेशा मुझे आपके चरणों में स्थान देने की बिनती करता हूँ।" उसपर मूर्तिमान आनंद होने वाले सतगुरुजी ने कहा, "फिलहाल, जो जो मुमुक्षु जन यहाँ आएँगे, उन्हें वेदांत ग्रंथों पर प्रवचन करके, उनका अर्थ समझाने की मैं तुम्हे सेवा देता हूँ। इस प्रकार का जनोद्धार का कार्य करने का तुम मन ही मन निश्चय करे लो, जिससे तुम्हे प्राप्त हुआ ज्ञान दृढ़ हो जाएगा।" उसपर गुरुआज्ञा शिरोधार्य मानकर शिवपुत्र ने गुरुचरणों में माथा रखा और उसके पश्चात प्रतिदिन उसने गुरुनाथजी के समक्ष वेदशास्त्रों पर प्रवचन करना आरंभ किया। उन दोनों की वेदांत संबंधी चर्चा सुनकर श्रोताओं के मन की वृत्ति ब्रह्माकार होकर गुरु चरणों में लीन हो जाती थी। जिनके कारण भव भय का विनाश होता है; जीवात्म भाव नष्ट होकर शुद्ध ब्रह्म रूप होने वाले

स्वरूप की प्राप्ति होती है, वे सतगुरुनाथजी धन्य हैं। अस्तु। जिसका श्रवण करने से सभी पाप भस्म हो जाते हैं, ऐसे इस श्री सिद्धारूढ़ कथामृत का मधुर सा यह सैंतालीसवाँ अध्याय श्री शिवदास श्री सिद्धारूढ़ स्वामीजी के चरणों में अर्पण करते हैं। सबका कल्याण हो।

॥ श्री गुरुसिद्धारूढ़चरणारविंदार्पणमस्तु ॥